मेवाड़ का संगीत-प्रेम और रजवाड़ी संगीत

शोध पत्र-संगीत

* दीपिका शर्मा

मेवाड़ प्रदेश का पुरातन इतिहास भारतीय संस्कृति के उत्थान और उसके संरक्षण का इतिहास माना जाता है। यहाँ की परम्पराएँ विदेशी आक्रान्ताओं से सुदीर्घ समय तक संघर्ष करती रहीं और अपने मूल स्वरूप की उन्नति करती हुई निरन्तर आगे बढ़ती रहीं। अतएव यहाँ के रहन–सहन, खान–पान, भाषा–बोली, साहित्य, मनोरंजन, पूजा–पाठ, धर्म–दर्शन, गीत–संगीत आदि पर भारतीयत्व आज भी देखा जा सकता है। यहाँ के संगीत–प्रेम और संगीत की साधना पर भी भारतीय परम्परा की अमिट और अद्‌भुत छाप देखी जाती है। मेवाड़ की स्थापना एतिहासिक दृष्टि से सातवीं–आठवीं शताब्दी में हुई थी। किन्तु यहाँ की मूल सांस्कृतिक धारा का जो प्रवाह रहा, वह इस समय से पूर्व का रहा तथा उसकी सुरक्षा और उन्नति मेवाड़ की स्थापना के बाद मेवाड़ के राजपूत शासन–काल में विशेष रूप से हुई ।

इतिहास की दृष्टि से देखा जाए तो इस प्रदेश के सांस्कृतिक जीवन पर इस्लामिक प्रभाव महाराणा सांगा और बाबर के बीच हुए युद्ध के बाद पड़ना आरम्भ हुआ था, जिसका उत्तरोत्तर विकास महाराणा प्रताप के निधन के पश्चात् उसके पुत्र महाराणा अमरसिंह (सन् 1597–1620) के शासनाधिरूढ़ होने पर पाया जाता है। इतिहासकारों का मानना है कि संगीत की दृष्टि से मेवाड़ का जन–जीवन अति समृद्ध था। संगीत के मुख्य तीन अंग माने जाते हैं– गायन, वादन और नत्य। संगीत के इन त्रिविध रूपों के साक्ष्य यहाँ के पुरातन स्थापत्य में देखे जा सकते हैं।

इसी तरह इस प्रदेश में विभिन्न जाति–उपजाति तथा धार्मिक विशेषताओं में विकसित हुई वन्य जन–जातियों की लोक संगीत परम्पराएँ भी अक्षुण्य रहकर यहाँ के संगीत–प्रेम की निरन्तरता को बनायें रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती देखी जाती हैं। इस प्रदेश के लोक साहित्य, जिसमें स्थानीय लोक संस्कृति के अभिराम दर्शन होते हैं, की इतिवृत्तात्मक स्मृतियाँ आज भी धुँधली नहीं हो पाई हैं, तथा इस कारण उस साहित्यिक लोक–सम्पदा में हम अपने प्राचीन गौरव–गरिमा के साथ संगीत के उत्कर्ष का परिचय भी भली भाँति प्राप्त करते हैं।[1] मेवाड़ प्रदेश का यह संगीत–प्रेम यहाँ परम्परा से लिखे जाते रहे गेय साहित्य एवं संगीत के शास्त्रीय ग्रन्थों से उजागर होता है।

महाराणा कुम्भा ने जहाँ भारतीय संगीत ग्रन्थों का शिरोमणि ग्रन्थ **'संगीत राज'** का प्रणयन किया, वहाँ उनके द्वारा संस्कृत भाषा में प्रणीत देव–स्तुति परक गेय गीत भी उनकी संगीत–साधना का स्पष्ट अंकन करते हैं। यही नहीं, महाराणा कुम्भा स्वयं वीणा–वादन में दक्ष थे। उन्हें तत्कालीन इतिहास में **'वीणा–वादन–तत्त्वज्ञ'** कहा गया है। संगीत में उनके ज्ञान का उत्कृष्ट मूल्यांकन करते हुए उन्हें 'भरत मुनि का अभिनव रूप' बताकर उनका यशोगान वर्णित हुआ है। महाराणा कुम्भा के बाद मेवाड़ में सोलहवीं शताब्दी के मध्य हुई मीरांबाई के संगीत–प्रेम ने संगीत की जिस गंगा को प्रवाहित किया, उसमें न केवल मेवाड़ या राजस्थान, बल्कि समूचा देश आप्लावित हो गया था, जिसकी सरसता–शीतलता आज भी बनी हुई है।

गिरधरगोपाल के प्रेम में पगे मीरां के बोल, उसके इकतारे की गूँज और घुंघरूओं की आवाज तो मानों आज भी इस धरती पर सुनाई देती हैं आगे चलकर यहाँ विकसित हुआ डागर घराने का संगीत, श्रीनाथजी के मंदिर में आश्रय पाकर विदेशों तक फैलने वाला पुष्टिमार्गीय भक्ति संगीत ध्रुपद–धमार **(हवेली संगीत)** इसी धरती की संगीत–साधना की विशिष्ट धरोहर हैं। [2] मेवाड़ में ही संगीत–परम्परा को दृढ़ता देने वाले जो दो ग्रन्थ और लिखे गये, वे हैं– पखावजी घनश्यामदास कृत **' मृदंग सागर '** और दूसरा पुरूषोत्तमदास प्रणीत –**'मृदंग वादन'** । दोनों ग्रन्थ दक्षिण भारतीय अवनद्ध वाद्य मृदंग के वादन–प्रशिक्षण को लेकर रचे गये हैं। इन दोनों पुरस्कारों का महत्त्व इसलिये है कि मृदंग–वादन विषय पर इतने विशद विवेचन शायद ही इससे पहले हुआ हैं।

मेवाड़ में जहाँ अनवरत रूप से सामान्य जन का संगीत के प्रति अटूट प्रेम रहा, वहाँ यहां के शासकों की संगीत–प्रियता भी कम नहीं रही। इस धरती के सर्वोपरि आराध्य भगवान श्री एकलिंगनाथ रहे। शिव का जहाँ ताण्डव नृत्य प्रसिद्ध है तो पार्वती का लास्य नृत्य। दोनों प्रकार के नृत्यों की भूमि यह मेवाड़ रही है।

यहाँ के राणा और राणियां भी संगीत प्रेमी रहे। स्वयं गाते–बजातें रहे और गीत लिख–लिख कर कलाकारों से गवाते भी रहे। इस दृष्टि से परवर्ती महाराणाओं में जवानसिंह ओर सज्जनसिंह रचित गेय पद बहुत प्रसिद्ध है और इसी तरह अन्तिम महाराणा भूपालसिंह की राणी बड़कुँवर के श्री एकलिंगजी और अम्बाजी को लेकर लिखे गये गीत आज भी मेवाड़ के संगीत –समारोहों में गाये जाते रहे हैं। मेवाड़ के शासकों ने जहाँ स्वयं ने संगीत को अपनी साधना बनाकर संगीत को आगे बढ़ाया, वहाँ समय–समय पर संगीत–साधकों का हर तरह से संवर्धन–परिवर्धन और पोषण भी किया और संगीत की श्रीवृद्धि की। मेवाड़ के इसी प्रेम संगीत की सघन परम्परा में रजवाड़ी संगीत भी बहुत बड़ी समृद्धि के साथ पनपा है, और फैला है। रजवाड़ी संगीत न शुद्ध शास्त्रीय संगीत है और न ही कोरा लोक संगीत। यह शास्त्रीय और लोक संगीत की बीच की एक संगीत विधा है, जिसका पोषण, संरक्षण और उन्नयन परम्परागत एवं राज्याश्रित लोकधर्मी कलाकारों के साधनागत जीवन में हुआ है। यह संगीत

*रिसर्च स्कॉलर, संगीत विभाग, राजस्थान विश्व विद्यालय, जयपुर

रजवाड़ी इसीलियें कहलाया कि इसकी विषयवस्तु जहाँ सामन्तों के कीर्ति –गान से जुड़ी रही, वहाँ इसका संगीत–पक्ष लोक संगीत से हटकर राजदरबार में गूँजती रही शास्त्रीय बंदिशों के निकट आ पहुँचा । इस तरह संगीत की यह विधा न तो ठेठ लोक जीवन के संगीत से जुड़ी रही और न ही शास्त्रीय संगीत की परम्परा में अपने को पूरी तरह ढाल सकी। इसका क्षेत्र भी बँधा–बँधाया रहा– राजप्रसादों या राजमहलों तथा छोटे़–बड़े ठिकानों एवं राजघरानों के दुर्गों और हवलेलियों के चाहर–दीवरों में बंद परिसर।

रजवाड़ी शब्द का अर्थ है– राजवाड़ा, अर्थात् राजाओं या शासकों का आवासीय स्थान। राजस्थानी शब्द कोष में इस शब्द का अर्थ राजमहल अथवा राज्य या रिसायत दिया गया है। जो भी हो, यह एक विशेषण शब्द है, जो मध्ययुगीन शासकों या सामन्तों के यशोगान में गाये जाने वाले गीतों के लिये प्रयुक्त होता है।[3]

रजवाड़ी, गीतों के बारे में रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत के विचार भी यहाँ जान लेना आवश्यक है। उनकी अवधारणा में रजवाड़ी गीत लोकगीत का ही एक दूसरा रूप है, जो साधारण लोक गीतों की तुलना में राग एवं साहित्य पक्ष से अधिक परिष्कृत माने जा सकते हैं। विषय और संगीत पक्ष को लेकर वे कहती हैं कि इन गीतों में जहाँ प्रेम, विलाप, शिकार, मदिरा, शूरता एवं सामंती संस्कृति उभर कर आई है, वहाँ साधारण लोकगीतों की तुलना में इनकी धुनें परिपक्व हैं, और इनकी रचनाओं में साहित्यिक रूप–स्वरूप और परिवेश को अधिक संरक्षण मिला है। पेशेवर लोगों द्वारा गाये जाने वालें गीतों में शास्त्रीय संगीत का भी पुट होता है। [4]

रजवाड़ी गीतों का गायन सामान्य वाद्यों के साथ भी होता है, जो ढोलक और हारमोनियम तक सीमित है, किन्तु इनके विशिष्ट आयोजन में ढोल, नगाड़ा, सितार, सांरगी आदि विशेष वाद्यों का भी खुलकर उपयोग होता है। राग की दृष्टि से कतिपय राग प्रसिद्ध हैं। जैसे माँड़–रजवाड़ी गीत का निजी राजस्थानी राग कहा जाता है। वैसे, पेशेवर गायक शुद्ध, देश, सूप, सारंग, सामेरी, मारू आदि रागों में इन गीतों को गाते रहे हैं। इन गीतों को गाने वाली जातियां कई है, जैसे–राणा, दमामी, लंगा, मांगणियार, ढाढी, मिरासी, जांगड़, नगारची आदि। लेकिन मेवाड़ में अधिकतर नगारची या दमामी जाति के लोग ही रजवाड़ी गीतों के यशस्वी गायक कलाकार हैं।

इन कलाकारों को सामंती युग में जहाँ राज्याश्रम प्राप्त होता था, वहां इनके भरण–पोषण के लिये खेती के लिए जमीनें और विशेष अवसरों पर मान–सम्मान भी प्रदान किये जाते थें। मेवाड़ के वर्तमान कलाकरों में जहाँ मांगीबाई और मोहिनी बाई के नाम विशेष रूप से लिये जाते है, वहाँ बीते जमाने में बाठरड़ा ठिकाना के रघुनाथ काठा और उदयपुर वासी चन्द्र गन्धर्व के नाम भी रजवाड़ी गीतों के विशिष्ट गायकों में सदा स्मरणीय हैं।

रजवाड़ी गीतों में मुख्य–प्रमुख गाये जाने वाले गीत हैं– गुमानीड़ा, रसिया री सेज, बाघजी, रतनराणां, प्यारा लागो म्हारा मजनूं, पातुड़ी कलाळ, लाखो फूलाणी आखेट गीत–मँगरा छोड दें, घाटी को नंगारो आदि। रजवाड़ी गीतों का सांगीतिक महत्त्व यद्यपि सामंतयुगीन संस्कृति की दृष्टि से रहा है, और इस कारण सामंत युग की समाप्ति के साथ–साथ इस संगीत की भी संगीत–जगत से विदाई हो रही है। किन्तु इसका जो कला पक्ष है, उसकी अपनी विशेषता रही है और इस विशेषता के कारण–उसका भारतीय संगीत में अपना अलग से स्थान रहा है।

अतः उसकी परम्परा को संगीत की दुनिया से अलग न होने देने में वर्तमान संगीतज्ञों और संगीत की संस्थाओं को विशेष ध्यान देने की जरूरत हैं विशेष बात यह है कि राजस्थानी संगीत की यह एक बड़ी साधना विलुप्त होने के कगार पर है। जहाँ इसके कलाकार भी अब धीरे–धीरे लुप्त होते जा रहे हैं, वहाँ इसका श्रोता भी दिन–दिन घट रहा है। ऐसे में सामंतयुगीन यह संगीत–संस्कृति डूब न जाए, इसका डर है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, खण्ड 2, प. 1126–27 2. इसी उपलक्ष्य में आज भी महाराणा मेवाड फाउण्डेशन उदयपुर राजस्थान के उच्चतम संगीतकारों को डागर घराना पुरस्कार प्रतिवर्ष दिया जाता है। 3. सीताराम लालस, राजस्थानी सबद कोष। 4. रानी लक्ष्मी कुमारी चूडांवत, राजस्थान के रीति–रिवाज, प . 43.